19 March, 2012, Daily Chhattisgarh, Raipur

सतपुड़ा की अनूठी खेती पद्धति है उतेरा

छत्तीसगढ़ विशेष रिपोर्ट

बाबा मायाराम

इन दिनों खेती-किसानी का संकट गहरा रहा है। नौबत यहां तक आ पहुंची है कि किसान अपनी जान दे रहे हैं। पिछले 16 सालों में ढाई लाख आत्महत्या कर चुके हैं। होषंगाबाद जिले में भी आत्महत्या होने लगी है। अब सवाल है कि क्या आज की भारी पूंजी वाली आधुनिक खेती का कोई विकल्प है। मध्यप्रदेश के होशंगाबाद जिले में परंपरागत खेती में इस विकल्प के कुछ सूत्र दिखाई देते हैं, जो मैंने हाल ही उन किसानों से जाने जिन्हें आदिवासी किसान सालों से करते आ रहे हैं।

सतपुड़ा घाटी के दतला पहाड़ की तलहटी में बसा है धड़ाव गांव। यहां की प्राकृतिक सुंदरता अपूर्व है। हाल ही मेरा यहां खेती-किसानी के अध्ययन के सिलसिले में जाना हुआ। तब चना की फसल कट रही थी। यहां का किसान गनपत हंसिया से चने काट रहा था। खेत में मचान बना था जहां से वह सुआ और चिड़िया भगाता है। जंगली सुअरों व सांभर से फसल की रखवाली करता है।

होशंगाबाद जिला भौगोलिक रूप से दो भागों में बंटा है। एक है सतपुड़ा की जंगल पट्टी दूसरा है नर्मदा का कछार। धड़ाव जंगल पट्टी का गांव है और दूधी नदी के किनारे स्थित है। यह नदी जिले की सीमा निर्धारित करती है। जंगल पट्टी में प्राय: सूखी और असिंचित खेती होती है। जबकि नर्मदा के कछार में तवा की नहरें हैं। कछार की जमीन काफी उपजाऊ मानी जाती है लेकिन अब यह लाजवाब जमीन भी जवाब देने लगी है।

सतपुड़ा की जंगल पट्टी में परंपरागत खेती की पद्धति प्रचलित है जिसे उतेरा कहा जाता है। इसमें 6-7 प्रकार के अनाजों को मिलाकर बोया जाता है। इस अनूठी पद्धति में ज्वार, धान, तिल्ली, तुअर, समा, कोदो मिलाकर बोते हैं। एक साथ सभी बीजों को मिला कर खेत में बोया जाता है और बक्खर चलाकर पेंटा लगा देते हैं। फसलें जून (आषाढ़) में बोई जाती हैं लेकिन अलग-अलग समय में काटी जाती हैं। पहले उड़द, फिर धान, ज्वार और अंत में तुअर कटती है। कुटकी जल्द पक जाती है।

60 की उम्र पार कर चुके गनपत बताते हैं कि इसमें किसी प्रकार की लागत नहीं है। खुद की मेहनत, बैलों का श्रम और बारिष की मदद से हमारी फसल पक जाती है। हर साल हम अगली फसल के लिए बीज बचाकर रखते हैं और उन्हें खेतों में बो देते हैं। हमारे पास बैल हैं जिनसे हम खेतों की जुताई करते हैं। मवेशियों से हमें गोबर खाद मिलती है जिससे हमारे खेतों की मिट्टी उपजाऊ बनती है।

उतेरा से पूरा भोजन मिल जाता है। दाल, चावल, रोटी और तेल सब कुछ। इसमें दलहन, तिलहन और मोटे अनाज सब शमिल हैं। इन सबसे साल भर की भोजन की जरूरत पूरी हो जाती है। मवेशियों के लिए चारा और मिट्टी को उर्वर बनाने के लिए जैव खाद मिल जाती है। यानी उतेरा से इंसानों के लिए अनाज, मवेशियों के लिए फसलों के ठंडल, भूसा और चारा, मिट्टी के लिए जैव खाद और फसलों के लिए जैविक कीटनाशक प्राप्त होते हैं।

गनपत की पत्नी बेटीबाई, गांव के पाजी और चन्द्रभान आदि किसानों का भी यही मानना था। रामख्याली ठाकुर तो इस खेती को रासायनिक खेती से भी अच्छा मानते हैं। क्योंकि इसमें लागत बिल्कुल नगण्य है। रासायनिक खाद और उर्वरक भी नहीं

के बराबर लगते हैं। रासायनिक खाद के बारे में चन्द्रभान ने कहा कि तो मछन्द्री (धरती) को भूंज (जला) रहे हैं। यानी मिट्टी को उपजाऊ बनाने वाले सूक्ष्म जीवाणु को खत्म कर रहे हैं। **(बाकी पेज 10 पर)**